वेद-अपौरुषेयत्व-विमर्श

डॉ. अश्विनीकुमार
शोधच्छात्र,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली
Ashvineedu99@gmail.com
9868606892

भारतीय दर्शन में वेद अपौरुषेयत्व का विवेचन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि भारतीय ज्ञान परम्परा में वेद अपौरुषेयत्व को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। वेद अखिल ज्ञान-विज्ञान का बृहद् स्रोत एवं भारतीय दार्शनिक विचार का मूल है। जिसके परिणामस्वरूप वेद ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, स्मृति, दर्शनादि विद्याओं के रूप में प्रसृत हो रहा है। महर्षि दयानन्द सरस्वती की दृष्टि में संहिता भाग वेद है तथा सायणाचार्य ने ऋग्वेदभाष्यभूमिका में निर्देश किया है- **'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्'**।[1] दार्शनिक चिन्तनधारा में आस्तिक-नास्तिक दो धारायें प्रस्फुटित होती हैं। वेद को प्रमाण स्वीकार करनेवाली परम्परा आस्तिक कहलायी और वेद विचारों को प्रमाण न माननेवाली परम्परा नास्तिक रूप में दृष्टिगत हुई।

वेद अत्यन्त मार्मिक ज्ञान और धर्म का मूल है।[2] तद्यथा- **'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'**।[3] जिससे वेदवाक्य स्वयंसिद्ध प्रमाण है। वेद शब्द की निष्पत्ति से ज्ञान, सत्ता, लाभ और विचार यह अर्थ लभ्य हो जाते हैं। यथा- विद ज्ञाने, विद सत्तायाम्, विदलृ लाभे और विद विचारणे धातुओं से भाव, करण और अधिकरण कारक में 'घञ्' प्रत्यय करने से 'वेद' शब्द सिद्ध होता है।[4] ऋग्वेदभाष्यभूमिका में आचार्य सायण वेद का लक्षण निम्न प्रकार से करते हैं- **'इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोरलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः।'**[5]

---

1 *ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका*
2 वेदोऽखिलो धर्ममूलम्। *मनुस्मृति*
3 *मनुस्मति*
4 *ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका*, वेदोत्पत्तिविषय
5 *ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका*

वेदोत्पत्ति

वेदों की रचना कब हुई? इसके रचयिता कौन हैं? इस प्रकार की जिज्ञासा मानव मस्तिष्क में अवश्य ही उत्पन्न होती है। यह जिज्ञासा भी वेदानुसन्धाताओं को अनादि-काल से आकुल किये हुए है। जिस प्रकार रामायण, महाभारत, रघुवंश आदि लौकिक संस्कृत ग्रन्थ वाल्मीकि, व्यास एवं कालिदास आदि द्वारा प्रणीत हैं उसी प्रकार वेदों की शाखायें अवश्य ही किसी द्वारा रचित हैं। तत्पश्चात् महर्षि दयानन्द सरस्वती ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेदोत्पत्तिविषय में यजुर्वेद मन्त्र का निर्देश करते हैं कि किस प्रकार से चारों वेद उत्पन्न हुए हैं, तद्यथा-

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत।। (*युजर्वेद*, ३१/७)

अर्थात् *सच्चिदानन्द परब्रह्म से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद, ये चारों वेद उत्पन्न हुए हैं।*

वेद परमात्मा से निःश्वास रूप में उत्पन्न हुए हैं जिसका ऋषि-महर्षियों ने अपने अन्तर्मन से साक्षात्कार किया है और सभी मनुष्य के लिए प्रसृत किया। बृहदारण्यकोपनिषद् का निम्न वचन इस विचार को प्रमाणित करता है-

एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरसः। (*बृहदारण्यकोपनिषद*, २/४)

अर्थात् *सर्वव्यापक परमात्मा से ही ऋक्, यजु, साम और अथर्व ये चारों वेद निःश्वास रूप में उत्पन्न हुए हैं।*

जिस प्रकार जगत् कि उत्पत्ति में ईश्वर के बिना किसी भी जीव का सामर्थ्य नहीं हो सकता उसी प्रकार चारों वेदों के रचने में मनुष्य का सामर्थ्य कदापि नहीं हो सकता। मनुष्य वेद को पढ़ने और उसका उपदेश करने में अपनी मेधा से अवश्य सामर्थ्यवान् हो सकता परन्तु उत्पत्ति में नहीं। निरुक्त में प्राप्त विवरण के आधार पर कहा जाता है कि ऋषि मन्त्र के द्रष्टा- साक्षात्कर्ता हैं स्रष्टा नहीं। निम्नवत् निरुक्त में उल्लेख प्राप्त होता है-

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। (निरुक्त, अ.१, पा.६)

वेद का अपौरुषेयत्व

सभी भारतीय दर्शनों में मीमांसा दर्शन वेद की प्रमाणिकता स्वीकार करने में अग्रगण्य है। न्यायवार्तिककार आचार्य उद्योतकर मीमांसा शब्द के विषय में कहते हैं- **'पूजितविचारवचनो हि मीमांसाशब्दः'**।[6] मीमांसा धर्म स्वरूप की जिज्ञासा करते हुए धर्म लक्षण की परिभाषा पर विशेष बल देता है।[7] मीमांसा दर्शन का आधारभूत ग्रन्थ **मीमांसासूत्र** है। इसे ही **जैमिनिसूत्र** कहते है। मीमांसा-सूत्र १२ अध्यायों में विभाजित है। जिस कारण से इसे द्वादशलक्षणी भी कहते हैं। मीमांसा दर्शन के प्रथम अध्याय के प्रथम पाद में शब्द नित्य एवं वेद वाक्य अपौरुषेय है- इसका विचार विस्तार से उपलब्ध होता है। कुल ३२ सूत्र हैं जिनमें शब्द नित्य-अनित्यत्व एवं वेद पौरुषेय-अपौरुषेय विचार पूर्वपक्ष एवं सिद्धान्तपक्ष के माध्यम से व्याख्यायित है।

यहाँ प्रथमतया शब्द-अनित्य-विषयक सूत्रों को पूर्वपक्ष के रूप में उपस्थापित किया जा रहा है-

- **कर्मैके तत्र दर्शनम्** – अर्थात् कर्म किया गया है। शब्द की उत्पत्ति के विषय में देखे जाने से अथवा शब्दोच्चारण के प्रयत्न के अनन्तर शब्द उपलब्ध होने से अनित्य है। (*मीमांसा सूत्र*, १/१/६)
- **अस्थानात्** – अर्थात् शब्द उच्चारण से पूर्व एवं अनन्तर अनुपलब्ध होने से। अतः स्थिर न होने के कारण। (*मीमांसा सूत्र*, १/१/७)
- **करोतिशब्दात्** – अर्थात् 'करोति' क्रियापद शब्द के प्रयोग से क्योंकि 'कृञ्' धातु व्यवहार व प्रयोग में अनित्य अर्थों के लिये नियत है। (*मीमांसा सूत्र*, १/१/८)
- **सत्त्वान्तरे च यौगपद्यात्** – अर्थात् अन्य पुरुष में शब्द की और अथवा विभिन्न देश में युगपत्-समान काल में उपलब्धि होने से शब्द अनित्य है। (*मीमांसा सूत्र*, १/१/९)
- **प्रकृतिविकृत्योश्च** – अर्थात् शब्द की प्रकृति-विकृतिभाव होने से शब्द अनित्य है। (*मीमांसा सूत्र*, १/१/१०)
- **वृद्धिश्च कर्त्तृभूम्नाऽस्य** – अर्थात् शब्द उच्चारण करनेवाले बहुत कर्ताओं के होने से शब्द की अनित्यता है। (*मीमांसा सूत्र*, १/१/११)

---

[6] विस्तारहेतु द्रष्टव्य- कुमार शशिप्रभा, **"The Concept of Veda- Apauruṣeyatva"**, '*Veda as Vision: Vistas of Vedic Philosophy*, pp.220

[7] अथातो धर्मजिज्ञासा। चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः। *जैमिनिसूत्र, १/१/१-२*

इस प्रकार छह सूत्रों द्वारा जैमिनि आचार्य ने शब्द अनित्य का पूर्वपक्ष के रूप में विचार अभिव्यक्त किया है।

तदनन्तर शब्द के अनित्यत्व पक्ष का खण्डन करते हुए सूत्रशः नित्यत्व पक्ष को सिद्धान्त रूप में निम्नवत् दर्शाया है-

- **समं तु तत्र दर्शनम्** – अर्थात् उच्चारणरूप में शब्द क्षणमात्र उपलब्ध होना- नित्य, अनित्य- दोनों पक्षों में समान है। (*मीमांसा सूत्र*, १/१/१२)
- **सतः परमदर्शनं विषयानागमात्** – अर्थात् विद्यमान शब्द का अभिव्यञ्जक प्रयत्न के पूर्वोत्तर काल में उपलब्ध न होना शब्दग्राहक श्रोत्ररूप विषय को प्राप्त न होने से होता है। (*मीमांसा सूत्र*, १/१/१३)
- **प्रयोगस्य परम्** – अर्थात् प्रयोग- उच्चारण के तात्पर्यवाला है। (*मीमांसा सूत्र*, १/१/१४)
- **आदित्यवद्यौगपद्यम्** – आदित्य- सूर्य के समान युगपत्- एकसाथ (अनेकदेशों में) शब्द की उपलब्धि समझनी चाहिए। (*मीमांसा सूत्र*, १/१/१५)
- **वर्णान्तरमविकारः** – एक वर्ण के स्थान में अन्य वर्ण का प्रयोग किया जाना विकार नहीं है। (*मीमांसा सूत्र*, १/१/१६)
- **नादवृद्धिः परा** – अर्थात् नादविषयक वृद्धि है। (*मीमांसा सूत्र*, १/१/१७)

इस प्रकार उक्त छह सूत्रों के द्वारा आचार्य जैमिनि एक-एक करके पूर्वपक्ष द्वारा उपस्थापित पक्षों का खण्डन करते हैं। तत्पश्चात् कतिपय सूत्रों द्वारा शब्द को नित्य सिद्ध प्रस्तुत करने के प्रसङ्ग में छह हेतुओं को अधिक विशिष्टता के साथ उपस्थापित करते हैं, जिनका निर्देश निम्नवत् है-

- **नित्यस्तु स्याद्दर्शनस्य परार्थत्वात्** – अर्थात् शब्द नित्य है उच्चारण के परार्थ होने से। (*मीमांसा सूत्र*, १/१/१८)
- **सर्वत्र योगपद्यात्** – अर्थात् सब गायों में (गो पद का उच्चारण किये जाने पर) युगपत्- एक साथ गोमात्र का ज्ञान हो जाने से। (*मीमांसा सूत्र*, १/१/१९)
- **सङ्ख्याभावात्** – अर्थात् स्थायी एक शब्द का ही अनेक बार उच्चारण होता रहता है। शब्द के भिन्न न होने से शब्द में द्वित्वादि सङ्ख्या का अभाव है। एकत्व सङ्ख्या अखण्ड है। (*मीमांसा सूत्र*, १/१/२०)
- **अनपेक्षत्वात्** – शब्दविनाश के कारण उपलब्ध न होने से शब्द नित्य है। (*मीमांसा सूत्र*, १/१/२१)

- **प्रख्याऽभावाच्च योगस्य** – अर्थात् शब्द के उत्पत्ति-विनाश के समवायि-असमवायि कारणों की अनुपलब्धि का निर्देश है। शब्द की अभिव्यक्ति में वायुसंयोग का योगदान है। (*मीमांसा सूत्र*, १/१/२२)
- **लिङ्गदर्शनाच्च** – लिङ्ग प्रमाण के देखे जाने से भी शब्द नित्य है। (*मीमांसा सूत्र*, १/१/२३)

उक्त रीति से आचार्य जैमिनि द्वादश मीमांसा सूत्रों द्वारा पूर्वपक्षवादी के तर्कों का निषेध करते हुए सिद्धान्तवादी के रूप में शब्द-नित्यत्व पक्ष को स्थापित करते हैं।

तदनुसार वेद अपौरुषेयत्व का विचार विस्तारपूर्वक प्रस्तुत करते हैं। वेद अपौरुषेय है अथवा पौरुषेय- यह जिज्ञासा बहुत पहले से मानव मस्तिष्क में चली आ रही है। इस विषय को सूत्रकार ने यहाँ पूर्वपक्ष के मतों एवं तर्कों को उपस्थापित करते हुए उत्तरपक्ष में अपने सिद्धान्त को सूत्रित किया है।

यहाँ पर वेद अपौरुषेत्व पर विमर्श करने से पूर्व वेद को पौरुषेय मानने वाले अन्य दर्शनाचार्यों के अभिमतों का निदर्शन करेंगे।

सर्वप्रथम न्यायदर्शनाचार्य वेद को पौरुषेय अर्थात् पुरुष द्वारा रचित स्वीकार करते हैं और वह पुरुष विशेष ईश्वर है- ऐसा उल्लेख करते हैं। वेदः पौरुषेयवान् वाक्यत्वात्- वेद पौरुषेय है- वाक्य होने के कारण। इस प्रकार का उनका अभिमत है। आचार्यगङ्गेशोपाध्याय भी तत्त्वचिन्तामणि में पौरुषेयत्व का लक्षण देते हैं-

सजातीयोच्चारणानपेक्षोच्चरितजातीयत्वम्। यथा महाभारतादेः पौरुषेयत्वम्। वेदस्य तु मीमांसकादिमते अपौरुषेयत्वम्। (तत्त्वचिन्तामणि,४)

सर्वलक्षणसङ्ग्रहकार गौरीस्वामी पौरुषेयत्व की परिभाषा में कहते हैं-

नूतनानुपूर्वीरचनत्वम्। पूर्वानुपूर्व्यनपेक्षपुंविशेषबुद्ध्यधीनानुपूर्वीमत्त्वम्। (सर्वलक्षणसङ्ग्रह, पृ.८२)

वेदान्त दर्शन वेद को पौरुषेय नहीं मानते परन्तु उनकी अपौरुषेयता मीमांसा दर्शन से विचित्र है। वेदान्तमत में पौरुषेय का अर्थ है- किसी पुरुष के द्वारा दूसरे प्रमाणों की सहायता से बनाया हुआ। वेद इस प्रकार का नहीं है- अत एव अपौरुषेय है। किन्हीं अन्य प्रमाणों की सहायता लेकर उसकी रचना नहीं की गई। इस प्रकार वेदान्त में ईश्वर वेद विरचित है यह उनको अभिमत है।

मीमांसक आचार्य वेद को अपौरुषेय स्वीकार किया है। वेद अपौरुषेय हैं, यह कैसे समझा जाय? इसकी व्याख्या में पहले पूर्वपक्ष का निरुपण करते हैं। तद्यथा-

वेदाँश्चैके सन्निकर्षं पुरुषाख्याः। (*मीमांसासूत्र*, १/१/२७)

अर्थात् वेद पुरुषविशेषों के नाम से जाने जाते हैं, जिस कारण से वेद पौरुषेय हैं।

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्वेद एवं ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदादि ग्रन्थों में अनेक ऋषि-महर्षियों एवं आचार्यों के नाम प्राप्त होते हैं- शाकल, वाजसनेयि, काठक, कालापक, पैप्पलाद इत्यादि। ये पुरुषविशेष उन मन्त्रों के रचयिता हैं। अतः वेद पौरुषेय है।

वेद पौरुषेयत्व के कथन में द्वितीय पक्ष प्रस्तुत करते हैं। यथा-

अनित्यदर्शनाच्च। (*मीमांसासूत्र*, १/१/२८)

अर्थात् अनित्य पुरुषों का उल्लेख होने से।

वैदिक संहिताओं में पुरुषों का नामोल्लेख मिलता है और पुरुष जन्म-मरणधर्मा है। इस विषय में कतिपय आचार्यों का भी मत प्राप्त होता है। उनका कथन है कि ऋषि वेद-मन्त्रार्थ के द्रष्टा हैं, उनकी स्मृति के लिए नाम निर्देश रहता है।

उक्त सूत्रों द्वारा पौरुषेयत्व का पक्ष उपस्थापित किया गया है।

तदनुसार अब आचार्य जैमिनि वेद अपौरुषेय है इस विचार को सुव्यक्त करने के लिए सिद्धान्तसूत्रों का विधान करते हैं। तद्यथा-

उक्तं तु शब्दपूर्वत्वम्। (*मीमांसासूत्र*, १/१/२९)

अर्थात् शब्द की नित्यता प्रथम प्रमाणपूर्वक सिद्ध कर दी गई है।

* * * * * * *

आख्या प्रवचनात्। (*मीमांसासूत्र*, १/१/३०)

अर्थात् काठक आदि नाम प्रवचन से हैं।

भिन्न-भिन्न शाखाओं के आचार्यों के द्वारा अध्ययन-अध्यापन के कारण से उन-उन आचार्यों के नाम से शाखायें कालान्तर प्रसिद्ध हो गई। वस्तुतः ये आचार्य उन-उन शाखाओं के रचयिता नहीं हैं। अतः कठ एवं कलाप दोनों आचार्य अपनी-अपनी शाखा के अध्ययन-अध्ययापन कराने के रूप में प्रसिद्ध थे ग्रन्थकार के रूप नहीं।

अर्थसङ्ग्रहकार लौगाक्षिभास्कर भी वेद के लक्षण-विभाग में निर्देश किया है-

अपौरुषेयं वाक्यं वेदः। स च विधिमन्त्रनामधेयनिषेधार्थवादभेदात् पञ्चविधः। (अर्थसङ्ग्रह, पृ.४३)

अर्थात् अपौरुषेय वाक्य को वेद कहते हैं। वेद पाँच प्रकार का होता है- विधि, मन्त्र, नामधेय, निषेध और अर्थवाद।

II.

आचार्य सायण ने भी वेद की प्रमाणिकता सिद्ध करने के अनन्तर वेद अपौरुषेयत्व पर अपना अभिमत प्रस्तुत किया है। उन्होंने मीमांसा सूत्र का उल्लेख करते हुए वेद की अपौरुषेयता सिद्ध की है। प्रथमतः उन्होंने ननु शब्द से पूर्वपक्ष के रूप में लिखा है- वेद पौरुषेय है। तद्यथा-

ननु एवमपि वेदस्य पौरुषेयत्वेन विप्रलम्भकवाक्यवत् अप्रमाण्यं स्यात्। पौरुषेयत्वं च प्रथमपादे पूर्वपक्षत्वेन जैमिनः सूत्रयामास- 'वेदांश्चैके सन्निकर्षं पुरुषाख्या' (जै॰ १/१/२७)। तत्तद्देशशाखकर्तृत्वेन कठादीनामाख्यातत्वात् वेदाः पौरुषेयाः। (ऋग्वेदभाष्यभूमिका, पृ.५७)

अर्थात् मन्त्र, विधि और अर्थवाद का प्रामाण्य मान लेने पर भी वेद के पौरुषेय होने के कारण विप्रलम्भक-वाक्य के सदृश वेद का अप्रामाण्य है। जैमिनि ने अपनी पूर्वमीमांसा के प्रथम पाद में वेद के पौरुषेयत्व को पूर्वपक्ष के रूप में सूत्रित किया है- 'क्योंकि वेद के कर्ता के रूप में पुरुषों के नामों का उल्लेख है, इसलिए वेद सन्निकर्ष अर्थात् आधुनिक हैं'। वेदों की शाखाओं के कर्ता के रूप में कठ आदि का उल्लेख हुआ है। इसलिए वेद पौरुषेय हैं।

उक्त विचार आचार्य सायण ने वेद के अपौरुषेय में पूर्वपक्ष के रूप में उद्धृत किया है। आचार्य जैमिनि मीमांसा सूत्र में वेद को अपौरुषेय सिद्ध करते हैं।

पतञ्जलि योगदर्शन में वेद की स्थिति:

पतञ्जलि मुनि द्वारा प्रतिपादित *योगदर्शन* वेदान्त, न्याय, सांख्य आदि के समान *आस्तिक दर्शन* है। "आस्तिक" का अर्थ है — वेद को प्रमाण और प्रामाणिक मानने वाला। अतः योगदर्शन में भी वेद का *अपौरुषेयत्व* (अमानुषकृत होना) स्वीकृत है।

2. 'अपौरुषेय' का अर्थ:

'अपौरुषेय' शब्द का अर्थ है — *जो किसी पुरुष (मानव) द्वारा निर्मित न हो।*

वेद *ईश्वरनिःश्वसित* (ईश्वर की श्वास-प्रसूत वाणी) माने गए हैं। वेदों में जो ज्ञान निहित है, वह किसी व्यक्ति के चिंतन का परिणाम नहीं, बल्कि *शाश्वत सत्य* है जो *ऋषियों के ध्यानयोग से* प्रकट हुआ।

3. योगदर्शन में ईश्वर और वेद का सम्बन्ध:

पतञ्जलि योगसूत्र (1.26) में कहा गया है —

"सः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।"

अर्थात् — ईश्वर सभी आचार्यों के गुरु हैं, क्योंकि वे *काल से परे* हैं।

यहाँ से यह निष्कर्ष निकलता है कि —
वेद, जो ईश्वर के ज्ञान से उत्पन्न हुए हैं, *कालातीत* और *अनादि* हैं। इसलिए वेद मानवकृत नहीं, बल्कि *ईश्वरकृत (अपौरुषेय)* हैं।

4. ऋषियों की भूमिका:
योगदर्शन यह मानता है कि ऋषि वेदों के *कर्ता नहीं, अपितु द्रष्टा (seer)* हैं। वे ध्यानयोग की अवस्था में सत्य का साक्षात्कार करते हैं, और वही सत्य "श्रुति" रूप में प्रकट होता है।
अतः वेद *प्रकट* किए जाते हैं, *रचे* नहीं जाते।

5. दार्शनिक अर्थ:
योगदर्शन में वेद के अपौरुषेयत्व का अर्थ यह भी है कि —
वेद का ज्ञान *अपरिवर्तनीय, सार्वभौमिक और नित्य* है। मनुष्य बदल सकता है, पर सत्य नहीं। वेद उस नित्य सत्य का उद्घोष हैं, जो ईश्वर की अनादि चेतना में स्थित है।

6. निष्कर्ष:
योगदर्शन के अनुसार —

- वेद **ईश्वरप्रणीत** हैं,
- वे **अनादि और नित्य** हैं,
- ऋषि उनके केवल *प्रत्यक्षद्रष्टा* हैं,
- अतः वेद **अपौरुषेय** हैं, और
- वे भारतीय दर्शन में **सर्वोच्च प्रमाण (शब्दप्रमाण)** के रूप में स्वीकृत हैं।

संक्षेप में सूत्ररूप निष्कर्ष:

"योगदर्शन के अनुसार वेद ईश्वर के नित्य ज्ञान का श्रुति-स्वरूप प्रकटीकरण हैं — न कि किसी मानव का कृतित्व। अतः वेद अपौरुषेय हैं।"

उपसंहार

वेद-अपौरुषेयत्व का सिद्धान्त भारतीय ज्ञानपरम्परा की आत्मा है। वेद को *अपौरुषेय* अर्थात् *अमानुषकृत* या *ईश्वरप्रणीत* कहा गया है, क्योंकि वह किसी व्यक्ति की रचना

नहीं, अपितु शाश्वत सत्य का श्रुति-स्वरूप उद्घोष है। आचार्य शङ्कर सहित समस्त वेदान्ती यह मानते हैं कि वेद न तो किसी मानव बुद्धि की उपज है, न ही उसका काल-सीमा में उद्भव हुआ है। वह अनादि और नित्य है, जो केवल *ऋषियों के ध्यान और योगबल* से प्रकट हुआ।

अपौरुषेयत्व का यह विचार न केवल वेद की प्रामाणिकता को स्थिर करता है, बल्कि उसे *सर्वोच्च प्रमाण* के रूप में प्रतिष्ठित करता है। यदि वेद मानवकृत माने जाएँ, तो उनमें त्रुटि, पक्षपात और सीमित दृष्टि का आशय उत्पन्न होगा; परंतु अपौरुषेय मानने पर वे शुद्ध, निष्पक्ष और सार्वभौमिक सत्य के वाहक बन जाते हैं।

आधुनिक दृष्टि से भी यह अवधारणा गहन दार्शनिक अर्थ रखती है — यह बताती है कि ज्ञान का स्रोत केवल व्यक्ति की बुद्धि नहीं, बल्कि एक *अन्तर्निहित ब्रह्मसत्य* है, जो कालातीत है। इस प्रकार, वेद-अपौरुषेयत्व केवल धार्मिक मत नहीं, बल्कि *ज्ञान की नित्यता और सार्वभौमिकता* का प्रतीक है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि — **वेद मानव की रचना नहीं, बल्कि ब्रह्मस्वरूप सत्य की वाणी हैं;** वे नित्य हैं, शाश्वत हैं, और भारतीय दर्शन में *प्रमाणों के सर्वोच्च रूप* के रूप में सदैव प्रतिष्ठित रहेंगे।